हिन्दी भाषा की विकास यात्रा

डा. आशा कपूर
एशोसिएट प्रोफेसर, मानविकी विभाग,
रूड़की विश्वविद्यालय, रूड़की

हिन्दी भाषा के विकास का सूत्र वैदिक काल से प्राप्त होता है । अपभ्रंश के अन्तिम रुप से सन् 1000 ई. तक बोलचाल की भाषा के रुप में हिन्दी का विकास हो चुका था । 1000 ई. के बाद साहित्य रचना के लिए इसका प्रयोग होने लगा । इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल और डा. श्यामसुन्दर दास ने सन् 1050 से हिन्दी का आदिकाल माना है ।

श्याम सुन्दर दास ने ''हिन्दी भाषा'' में लिखा है - " हेमचन्द्र के समय से पूर्वी हिन्दी का विकास होने लगा था और चन्द के समय तक उसका कुछ रुप स्थिर हो गया था । अतएव हिन्दी का आदिकाल हम सन् 1050 से मान सकते हैं ।

सन् 1000 ई. से पहले हिन्दी बोलचाल का क्या रुप था ? इसे ठीक जानने के लिए अब कोई प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं है । डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार हिन्दी सन् 778 ई. के पहले से बोली जाती रही होगी । इसके समर्थन में उन्होंने कुवलयमाला नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जिसमें मेरे, तेरे, आउ आदि शब्द मिलते हैं । इसके अतिरिक्त 7वीं शती के ''पुष्य'' नामक कवि की एक अलंकार शास्त्र शीर्षक पुस्तक का उल्लेख मिलता है । इसी प्रकार अब्दुल एराकी कृत कुरान का हिन्दी अनुवाद मिलता है । परन्तु इन सबकी भाषा के नमूने प्राप्त नहीं हैं ।

आठवीं से दसवीं शताब्दी तक वज्रयानी सिद्धों नाथों एवं जैनियों के अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया जाने लगा । इसीलिए पंडित राहुल सांकृत्यायन और चन्द्रधर शर्मा गुंलेरी ने इस मिश्रित भाषा को "पुरानी हिन्दी" नाम दिया था । 1000 ई. के आसपास हिन्दी भाषा के विकास का व्यवस्थित इतिहास आरम्भ होता है । डा. श्याम सुन्दर दास तथा डा. धीरेन्द्र वर्मा जैसे भाषा वैज्ञानिकों ने इस विकास को तीन कालों में विभाजित किया है:

1. आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई.)

इसे सन्धिकाल या संक्रमण काल भी कहा जा सकता है क्योंकि इस काल में भाषा प्राचीन रुप से नवीन रुप में संक्रमण कर रही थी । भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव विद्यमान था और हिन्दी की बोलियों का स्वरुप स्पष्ट तथा विकसित नहीं हो सका था । यह हिन्दी का शैशव काल था ।

यह काल अध्ययन सामग्री की दृष्टि से अत्यन्त संदिग्ध है । हिन्दी के शिलालेख और ताम्रपत्र इत्यादि अधिक नहीं मिलते हैं । सिद्धों, नाथों और जैनियों का धार्मिक साहित्य, चारणों की वीरगाथाएं, नीति और मनोरंजन की जो सामग्री उपलब्ध है वह भी पूर्णत: प्रामाणिक नहीं है । अत: इस की भाषा का पूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है ।

आदिकाल में हमें भाषा के कई रुप मिलते हैं । एक मिश्रित रुप है जो जैनियों, नाथों आदि के साहित्य में प्राप्त होता है । इसमें हिन्दी और अपभ्रंश की मिलावट है । आ. रामचन्द्र शुक्ल ने इस मिश्रित भाषा को सधुक्कड़ी कहा है । इसका आगे चलकर विकसित रुप कबीर साहित्य में मिलता है । इसके अतिरिक्त दो अन्य भाषा रुप डिंगल और पिंगल मिलते हैं । आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रदेशिक बोलियों के साथ ब्रज तथा मध्य देश की भाषा का आश्रय लेकर एक सामान्य साहित्यिक भाषा भी स्वीकृत हो चुकी थी जो चारणों में पिंगल भाषा के नाम से पुकारी जाती थी । अपभ्रंश के योग से शुद्ध राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रुप डिंगल कहा जाता था । राजनीतिक दृष्टि से आदिकाल में हिन्दी प्रदेश तीन रुपों में विभक्त था :

1. पश्चिम में चौहान वंश जिसका केन्द्र दिल्ली था ।
2. दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान में राजपूतों का राज्य और
3. पूर्व में राठौर वंश की राजधानी कन्नौज, जिसकी सीमा अयोध्या और काशी तक चली गई थी ।

ये राज्य साहित्य चर्चा के भी केन्द्र थे । नरपति नाल्ह और चंदबरदायी का संबंध अजमेर और दिल्ली से था । कन्नौज में प्राकृत और संस्कृत का विशेष महत्व था । 13वीं शती तक आते-आते ये तीनों राज्य नष्ट हो गए और समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश पर मुगल शासकों का आधिपत्य हो गया, जिनकी मातृभाषा तुर्की और दरबार की भाषा फारसी थी । फलत: हिन्दी भाषा के विकास पर तुर्की और फारसी का अनेक रुपों में प्रभाव पड़ा । फारसी के प्रभाव से नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ एवं अनेक विदेशी शब्द

हिन्दी भाषा के अंग बन गए । प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार - अपभ्रंश में अरबी, फारसी, तुर्की आदि शब्दों की संख्या एक सौ से अधिक न होगी, परन्तु इस युग में उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई । इस काल के प्रसिद्ध कवियों में नरपति नाल्ह, चन्दबरदायी जगनिक, गोरखनाथ, अमीर खुसरो, विद्यापति कबीर इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

2. मध्यकाल (1500 ई. -1800 ई.)

इस युग में देश की स्थिति में पुन: परिवर्तन हुए । हिन्दी, प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त हो गई । शासन की बागडोर तुर्की सम्राटों के हाथ से निकलकर मुगलों के हाथों में चली गई । देश में शान्ति और स्थिरता आई, फलस्वरुप साहित्य चर्चा विशेष रुप से हुई । अकबर आदि मुगल शासकों ने भाषा संबंधी उदार दृष्टिकोण अपनाया जिससे हिन्दी को विकसित होने का उपयुक्त अवसर मिल गया ।

आदिकाल में हिन्दी बोलियों का स्पष्ट रुप नहीं था । इस युग में अवधी और ब्रज, इन दो भाषाओं के साहित्यिक रुपों का स्वस्थ विकास हुआ । इनमें ब्रज समस्त हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा बन गई । जायसी और तुलसी ने अवधी को अधिक उत्कर्ष प्रदान किया ।

भाषा के विकास की दृष्टि से भी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, अपभ्रंश के रुप समाप्त हो गए और हिन्दी का स्पष्ट रुप निखर आया । साथ ही हिन्दी के अपने शब्द प्रयुक्त होने लगे । शिक्षित वर्ग की हिन्दी में क़, ख़, ग़, ज़, और फ़, पाँच नवीन ध्वनियों का समावेश हुआ । लोगों की धर्म के प्रति आस्था बढ़ी । धार्मिक साहित्य और संस्कृत धर्म ग्रन्थों का प्रचार बढ़ा । भाषा में तत्सम शब्दावली की अधिकता भक्तिकाल में आ गई । विदेशी प्रभाव के फलस्वरुप अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हो गई । साढ़े तीन हजार अरबी, 2500 फारसी तथा 400-500 तुर्की शब्द आ गए ।

मध्यकाल के अन्त में यूरोप की भी कुछ शब्दावली का समावेश हुआ । कई सौ पुर्त्तगाल, फ्रान्सीसी तथा अंग्रेजी शब्द हिन्दी भाषा में आ गए । हिन्दी में प्रचलित कुछ विदेशी शब्द निम्नलिखित प्रकार के हैं :

फारसी - ईमान, खूब, आईना, दुकान, गरम, ज़हर, किशमिश, अगर, उम्मीद, गुलाब, फर्श, खुश, दरोगा, सुबह, शाम, रुमाल, ज़मीन, ज़हाज़ आदि ।

अरबी - कीमत, फैसला, कायदा, तरफ, नहर, कसरत, हैजा, कानून, कागज, किताब, नशा, इज्ज़त, वकील, वज़न, हुक्म आदि ।

तुर्की - चमचा या चम्मच, तमगा, तोप, चाकू, कैंची, उर्दू, बेगम, ग़लीचा, कालीन, बावर्ची, कुली, चेचक, बहादुर आदि ।

पुर्तगाली - तंबाकू, पेड़ा, गिरजा, चाभी, कमीज, गोभी, तौलिया, काजू, फालतू, फीता, बाल्टी, मेज़, अलमारी आदि ।

फ्रेंच - कारतूस, अंग्रेज़ आदि ।

अंग्रेजी - बटन, फीस, मेम्बर, पिन, पेट्रोल, पुलिस, पेंसिल, बूट, रेल, इंच आदि ।

मध्यकाल के प्रमुख साहित्यकारों में जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, भूषण, बिहारी तथा देव हैं । इनकी कृतियों में भाषा का साहित्यिक रुप सुरक्षित है । इस काल की विशेषता यह है कि हिन्दी की दो प्रमुख बोलियों - ब्रज एवं अवधी का उत्कृष्ट साहित्यिक रूप जायसी, सूर एवं तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध होता है ।

3. आधुनिक काल (1800 ई. से अब तक)

इस युग में देश की राजनीतिक स्थिति में पुन: परिवर्तन हुआ । मध्यकाल में उत्कर्ष प्राप्त करने वाली दोनों भाषाएं - अवधी और ब्रजभाषा के पराभव का युग रहा । राज्यसत्ता मुसलमानों के हाथ से निकलकर अंग्रेजों के हाथ में आ गई । इसका प्रभाव भाषा के विकास पर भी पड़ा । अंग्रेजी की प्रचुर शब्दावली हिन्दी भाषा का अंग बन गई । वैसे भाषा विकास की दृष्टि से यह हिन्दी का समृद्धि काल कहा जा सकता है । भाषा के तीन रुपों का प्रयोग इस काल में हुआ है :

1 . ब्रज
2 . अवधी
3 . मिश्रित (ब्रज और अवधी)

19वीं शती के अन्त तक काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग होता रहा । उसके उपरान्त खड़ी बोली का प्रवेश हुआ । अंग्रेजी के प्रभाव से नवीन साहित्यिक शैलियों और प्रवृत्तियों का विकास हुआ, लगभग 5000 अंगेजी शब्द हिन्दी में आ गए । ब्रज भाषा की शक्ति क्षीण हो गई तथा खड़ी बोली का विकास हुआ । खड़ी बोली का गद्य साहित्य में प्रचार हुआ जिसका श्रेय साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा धार्मिक क्षेत्र में स्वापी दयानन्द को है ।

वैसे मध्यकाल के कवि अमीर खुसरो की रचना तो खड़ी बोली में ही है जिस पर कुछ अंशों में अरबी - फारसी का प्रभाव परिलक्षित होता हैं किन्तु साहित्यिक गतिशीलता की प्रतिस्पर्धा में, मध्यकाल में खड़ी बोली परास्त सी हो गई -

श्याम बरन की एक है नारी, माथे ऊपर लागे प्यारी ।।
या का अरथ जो कोई खोले, कुत्ते की वह बोली बोले ।।

20वीं शती तक आते-आते खड़ी बोली गद्य और पद्य की एकमात्र साहित्यिक भाषा हो गई । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जहां उसे व्याकरण सम्मत बनाकर वाह्य रुप का परिष्कार किया, वहां छायावादी कवियों ने उसकी व्यंजना शक्ति का अत्यधिक विकास करके उसकी आत्मा में माधुर्य और सरसता का संचार किया स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त करके खड़ी बोली ने राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण कर लिया है ।

हिन्दी में एक नए स्वर 'ऑ ` का आगमन हो गया । इस युग के प्रमुख गद्य लेखकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा बाबू गुलाबराय हैं । साहित्य की विभिन्न विधाओं - निबन्ध, नाटक, एकांकी, रेडियो, नाटक, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोतार्ज आदि तथा कविता के क्षेत्र में महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीत, प्रगीत इत्यादि की बहुलता है । विदेशी और प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण और आत्मसात करने की प्रवृति हिन्दी के विकास में सहायक सिद्ध हो रही है । इसे हिन्दी भाषा की दृष्टि से उत्कर्ष काल कहा जा सकता है ।

अन्त में डा. विद्या निवास मिश्र के शब्दों में कह सकते हैं - हिन्दी ने संस्कृत की ज्ञान गरिमा की धरोहर संभाली । पुरानी प्राकृत परम्परा का सहज बाँकपन संभाला । उसने पालि और प्राकृत श्रमण साहित्य की त्याग वृत्ति संभाली, उसने अपभ्रंश साहित्य का पौरुष पराक्रम और जीवन के रसास्वाद की वृत्ति संभाली ।

सारांश में उसने जातीय राग-विराग, जातीय अमर्ष, जातीय अध्यात्म और जातीय विश्वदृष्टि की धरोहर बड़े यत्न से संभाली । ये विचार उन्होंने 27-28 सितम्बर, 1993 के दौरान आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुरी अधिवेशन में साहित्य परिषद के अध्यक्ष के पद से व्यक्त किये थे ।

***